

कु छ वर्ष पहले मैंने भोपाल शहर के राजीव गाँधी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में कक्षा चार से लेकर कक्षा बारह तक के विद्यार्थियों को अँग्रेज़ी पढ़ाई। ये विद्यार्थी अधिकांशतः शहर के ‘अच्छे’ विद्यालयों से ‘अलग हो गए’ या ‘टुकराए गए’ थे। ज़ाहिराना तौर पर वे हताश थे और उनमें स्वाभिमान की कमी थी। मैंने काफी समय उन बच्चों से बात करने में बिताया। उन्होंने मुझे बताया कि सीखने की प्रक्रिया में तब तक जो कुछ भी सामने आया था उसमें कुछ भी चुनौतीपूर्ण और रुचिकर नहीं था। ज़्यादा महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि उन्होंने न केवल अँग्रेज़ी बल्कि अपनी मातृभाषा (हिन्दी) व अन्य विषयों में भी बुरा प्रदर्शन किया था। इस बात ने मुझे अँग्रेज़ी भाषा शिक्षण में कई प्रयोगात्मक तरीकों को आजमाने के लिए प्रेरित किया। बाद में मैंने हिन्दी की शिक्षिका को भी हिन्दी पढ़ाने में इन तरीकों को प्रयोग में लाने के लिए राज़ी किया। छः महीने के भीतर ही मैंने विद्यार्थियों के प्रदर्शन स्तर में सुस्पष्ट बदलाव पाया। उन्होंने न केवल अँग्रेज़ी और हिन्दी बल्कि अन्य विषयों में भी सुधार किया। इसके अलावा उनका आत्मविश्वास बढ़ा और अपने समग्र आचरण में वे ज़्यादा सामाजिक हो गए।

यहाँ यह बताना ज़रूरी है कि भाषाई कौशल सुधारने के ये प्रयोग माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में

किए गए थे। लेकिन मैं मानती हूँ कि निचली कक्षाओं में भी ये प्रयोग किए जा सकते हैं।

यह समझने के लिए कि इन प्रयोगों को मेरे पूर्वानुमान से भी अधिक सफलता क्यों मिली, शुरुआती पैराग्राफ में चिन्हित किए गए कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों पर गौर करें।

1. अलग हो गए, टुकराए गए, हताश; स्वाभिमान की कमी।
2. न केवल अँग्रेज़ी बल्कि अपनी मातृभाषा (हिन्दी) में भी खराब प्रदर्शन।
3. सीखने की प्रक्रिया में कुछ भी चुनौतीपूर्ण व रोचक न होना।
4. उन्होंने न केवल अँग्रेज़ी बल्कि अन्य विषयों में भी सुधार किया।
5. वे ज़्यादा आत्मविश्वासी और अपने समग्र व्यवहार में ज़्यादा सामाजिक हो गए।

विद्यालयों में भाषा शिक्षण

दूसरे शब्दों में, भाषा में निपुणता सामान्य अध्ययन में निपुणता लाने के साथ-साथ व्यक्तित्व में भी निखार लाती है। लेकिन कौन-सी भाषा? हिन्दी, अँग्रेज़ी या मातृभाषा? इस सवाल को भारतीय सन्दर्भ में उठाए जाने की ज़रूरत है।

देश की बहुभाषाई प्रकृति के चलते भारत में हमने त्रिभाषी सूत्र अपनाया है जिसमें हर राज्य प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में सीखने पर ज़ोर देता है। ऐसा होना भी चाहिए। बच्चे का

मनोवैज्ञानिक व सामाजिक विकास मुख्यतः उस भाषा पर निर्भर करता है जिसका बच्चे को घर में, आस-पड़ोस में और पहली बार स्कूल जाने पर अनुभव होता है। यही उस बच्चे की मातृभाषा या पहली भाषा होती है।

भारत में दूसरी भाषा सम्पर्क भाषा होती है जो या तो हिन्दी होती है या अँग्रेज़ी। यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप किस राज्य में निवास करते हैं। इसके साथ ही हिन्दी को राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा की तरह भी देखा जाता है और अँग्रेज़ी को राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा के तौर पर देखा जाता है।

तीसरी भाषा मातृभाषा के अलावा कोई भारतीय भाषा होती है जो बच्चा 'राष्ट्रीय एकीकरण' को और अधिक प्रोत्साहित करने के लिए सीखता है। इस सूची में संस्कृत शामिल है।

अब तक अधिकांश राज्य दूसरी और तीसरी भाषाएँ सीखने के काम को प्राथमिक शिक्षा के बाद तक के लिए टालते रहे हैं। प्रारम्भिक केन्द्र बिन्दु मातृभाषा रही है। परन्तु हाल के कुछ वर्षों में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय नौकरियों के बाज़ार में हो रही हलचल ने अँग्रेज़ी सीखने के महत्त्व को बढ़ा दिया है। स्वाभाविक तौर पर समाज के सभी वर्गों से आ रही माँग के जवाब में देश के हर कोने और हर नुक्कड़ पर निजी

क्षेत्र के अँग्रेज़ी माध्यम वाले 'कॉन्वेंट' और 'पब्लिक' स्कूल उठ खड़े हुए हैं। यहाँ तक कि उन राज्यों में भी जहाँ सरकारी स्कूल मातृभाषा में ही पढ़ाते हैं, कई स्कूलों ने प्रारम्भिक स्तर पर अँग्रेज़ी सीखना अनिवार्य कर दिया है।

किसी भी शिक्षाविद् के लिए यह चुनौतीपूर्ण स्थिति है और बेचारे बच्चे के पास इस मामले में चुनाव की कोई स्वतंत्रता नहीं है। हालाँकि शुरुआत करने के लिए मातृभाषा से बेहतर कुछ नहीं है, पर ऐसी स्थिति में कोई क्या करे जब एक बच्चे को प्रारम्भिक स्तर पर तीन नहीं तो कम-से-कम दो भाषाएँ सीखना अनिवार्य हो?

रोचक बात यह है कि यह स्थिति खास भारतीय सन्दर्भ में ही देखने में आती हो, ऐसा नहीं है। गोल्डा मायर माउण्ट कैरमल अन्तर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण केन्द्र में कार्यरत वरिष्ठ शिक्षिका और पाठ्यक्रम निदेशक जैनेट हर्शमैन के निम्नलिखित कथन पर विचार कीजिए: "हमने सीखने में आने वाली दिक्कतों और नव साक्षरता पर पहले कई कोर्स चलाए हैं। इन कोर्सों के अन्त में हम हमेशा भाग लेने वालों से भविष्य के लिए सुझाव माँगते हैं, और इसमें द्विभाषा और बहुभाषा प्रयोग का मुद्दा ज़ोर-शोर से उठकर आया। यदि कोई बच्चा घर में अपनी मातृभाषा, बाहर सड़कों पर कोई



अन्य भाषा और स्कूल में एक तीसरी भाषा — जैसे अंग्रेज़ी — सुनता है, तब उसे किस भाषा में पढ़ना-लिखना सिखाया जाना चाहिए?”

कैसे माने मातृ भाषा?

इस प्रश्न का उत्तर ढूँढते हुए हमें पहले बच्चे की मातृभाषा का निर्धारण करना पड़ेगा। यह उतना आसान नहीं है जितना सोचने में लगता है। उदाहरण के लिए, देश के हिन्दी भाषी क्षेत्र के स्कूलों ने हिन्दी को मातृभाषा माना है। पर क्या यह वाकई सही है? राजीव गाँधी विद्यालय में मेरे पास ऐसे विद्यार्थी थे जो मराठी, सिन्धी, बुन्देलखण्डी और नेपाली आदि भाषाएँ बोलते थे। राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकांश बच्चे ऐसी बोलियाँ बोलते हैं जो हिन्दी से भिन्न हैं। इस तरह आमतौर पर हमारे सामने ऐसी स्थिति होती है कि स्कूल में बच्चे की पहली भाषा मातृभाषा न होकर हिन्दी होती है जिसे तार्किक रूप से दूसरी भाषा की तरह देखा जाना चाहिए। इसका मतलब है कि आदिवासी बोली बोलने वाले बच्चे के लिए हिन्दी सीखना उतनी ही मुश्किलें खड़ी करेगा जितना कि अंग्रेज़ी सीखना।

घर पर मातृभाषा सीखना काफी स्वाभाविक तौर पर होता है और बच्चा इस काम को खासे असरदार ढंग से करता है। यह प्रक्रिया बिना किसी सोची-विचारी योजना या प्रयास के अपने आप घटती है; क्रमबद्ध तरीके

से कोई शिक्षण नहीं होता। बच्चे के आस-पास रहने वाले लोग, वयस्क भी और दूसरे बच्चे भी, भाषा पर अधिकार करने की इस प्रक्रिया में मदद करते हैं। हम कह सकते हैं कि हर बच्चा अपनी मातृभाषा काफी कारगर ढंग से सीखता है, बिना किसी योजनाबद्ध या व्यवस्थित शिक्षण के और बगैर किसी औपचारिक विद्यालय जाए। ऐसा इसलिए है क्योंकि वहाँ भाषा को ऐसे साधन की तरह देखा जाता है जो बच्चे की अभिव्यक्ति क्षमता और सामाजिक क्रियाशीलता को समृद्ध करता है।

मातृभाषा पर अधिकार हो जाने के बाद बच्चे को इस काबिल हो जाना चाहिए कि वह दूसरी भाषाएँ सीखने की ओर बढ़ सके। माउण्ट कैरमल प्रशिक्षण केन्द्र कोर्स की विवरण-पुस्तिका कहती है: “जिन बच्चों की अपनी मातृभाषा पर अच्छी पकड़ है, वे ज़रूरत के अनुसार किसी भी दूसरी भाषा पर आसानी से और बहुत जल्दी अधिकार कर लेंगे। उनके लिए ये सुनना भी ज़रूरी है कि उनकी भाषा दूसरों के लिए मान्य है, ताकि अपनी संस्कृति में उनका विश्वास बढ़ जाए और अपनी मातृभाषा बोलने के बारे में वे अधिक आश्वस्त हो जाएँ।”

घर, विद्यालय और भाषा शिक्षण

आइए, हम और गहराई से देखें कि बच्चा घर पर कैसे सीखता है। शब्द कई रास्तों से होते हुए अपना

अर्थ हासिल करते हैं, जैसे सन्दर्भ से, ध्वनि से, बर्ताव से या हाव-भाव से। शुरुआती शब्द ध्वनियों (जैसे किली, किली... आदि) पर अधिक निर्भर करते हैं और वे शारीरिक क्रियाओं (जैसे गले लगाना) और भाव-भंगिमाओं के साथ मिलकर आते हैं। शब्द समूहों का अर्थ तय करने में प्रसंग अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। शुरु में बच्चा शब्द समूह के प्रत्येक शब्द का अलग-अलग अर्थ जाने बिना उसके समग्र आशय को महसूस करता है। वह विभिन्न प्रकार के शब्दों में अन्तर करना भी शुरु कर देता है, जैसे, करने वाले शब्द (क्रियाएँ) और नाम वाले शब्द (संज्ञाएँ)। धीरे-धीरे शब्द समूह की संरचना अर्थात् उसका व्याकरण समझ में आने लगता है। यदि बच्चा किसी अंग्रेज़ी भाषी वातावरण में है तो वह सीखता है कि क्रिया, कर्ता और कर्म को जोड़ती है। यदि वह हिन्दी भाषी वातावरण में है तो वह समझ जाता है कि क्रिया, कर्ता और कर्म के बाद, वाक्य के अन्त में आती है।

समस्या तब शुरु होती है जब बच्चा स्कूल जाता है। मैंने पाया कि उन मामलों में भी जहाँ अनुकूल परिवेश मिलने के कारण मातृभाषा पहले ही एक हद तक सीखी जा चुकी थी, अंग्रेज़ी ग्रहण करने में कोई खास प्रगति नहीं हुई। इसका कारण यह है कि स्कूल में सीखने का वातावरण



घर के वातावरण से भिन्न होता है। सीखना अब 'शिक्षण' के रास्ते से होता है, विशेषकर पढ़ना और लिखना। इसमें बच्चे से 'नपे-तुले' 'उत्पाद' की अपेक्षा की जाती है। दूसरे शब्दों में, भाषा को — चाहे वह पहली, दूसरी या तीसरी भाषा हो — संवाद के माध्यम या साधन की तरह न देखकर एक विषय की तरह पढ़ाया जाता है।

कई प्रथाओं का बहुत सख्ती से पालन किया जाता है क्योंकि उसी तरह शिक्षकों ने 'विषय' को सीखा था और उन्हें वे परिचित तरीके ही सहज लगते हैं। भाषा की एक पाठ्यपुस्तक होती है, पर व्याकरण के नियम मूल पाठ से अलग स्वतंत्र रूप से सिखाए जाते हैं। कुछ अभ्यास भी होते हैं जिनके द्वारा जो भी सीखा गया है उसे पक्का किया जाता है। अतः इस व्याकरण के ढाँचे को रटकर सीखना है जो पाठ्य-सन्दर्भ से जुड़ा नहीं होता। मूल पाठ अलग से पढ़ाया जाता है और उसमें शिक्षक बच्चों को पाठ्यांशों पर आधारित प्रश्नों के बँधे-बँधाए मानक उत्तरों को रटकर जस का तस दोहराने के लिए प्रेरित करते हैं। वे कुछ 'अभ्यास' भी देते हैं, जिसका मतलब होता है 'रचनात्मक लेखन' के लिए कुछ गिने-चुने विषयों पर दी गई सामग्री को रटकर तैयार कर लेना।

शिक्षक मूल पाठ पढ़ाते समय अनुवाद का

सहारा लेते हैं क्योंकि उन्हें अपनी क्षमताओं पर उतना भरोसा नहीं होता है। इसमें लक्ष्य भाषा (दूसरी भाषा) के एक-एक शब्द को मातृभाषा के समतुल्य शब्द द्वारा बदला जाता है। अपरिहार्य रूप से विद्यार्थी भी अनुवाद के इस तरीके को आत्मसात करने लगते हैं और फिर लगता है कि वे इससे कभी बाहर ही नहीं निकल पाते। वाक्य निर्माण में वे एक ही प्रकार की गलतियाँ करते हैं। उदाहरण के लिए, एक हिन्दी भाषी विद्यार्थी अँग्रेज़ी का कोई वाक्य बनाते समय क्रिया को वाक्य के अन्त में लगाने के बारे में सोचेगा क्योंकि हिन्दी में व्याकरण का ढाँचा ऐसा ही है। जो सीखने वाले इस पद्धति पर निर्भर करते हैं वे अगले स्तर पर नहीं जा पाते, और शायद नियुक्त किए गए अँग्रेज़ी शिक्षकों की भी यही मुश्किल होती है।

इस प्रकार शब्दों की अदला-बदली की यह प्रक्रिया भाषा के मूल कौशलों को कुण्ठित कर देती है। इन कौशलों के विकास को न पोषण मिलता है, न प्रोत्साहन। इसी वजह से बच्चे ठीक तरह से न तो अँग्रेज़ी सीख पाते हैं और न हिन्दी। ऐसा नहीं है कि वे भाषाओं में या दूसरे विषयों में अच्छे अंक नहीं ला पाते। मैंने ऐसे कई स्कूलों, जैसे होशंगाबाद, पचमढी और भोपाल के केन्द्रीय विद्यालयों में अनेक बच्चों की प्रगति को सिलसिलेवार देखा है जहाँ दो भाषाओं (हिन्दी और अँग्रेज़ी) का विषयों को पढ़ाने और सीखने के

लिए इस्तेमाल किया जाता है। मैंने पाया कि सीखने वालों में कुछ प्रतिशत बच्चे ऐसे थे जिन्हें अंक पाने की दृष्टि से अधिक समस्या नहीं थी। परन्तु जब मैंने यह जानने की कोशिश की कि विद्यार्थी अनदेखे पाठों को कहाँ तक समझ पाते हैं और क्या उसके बाद उपयुक्त जवाब दे पाते हैं, तो सक्षम विद्यार्थियों का प्रतिशत और भी घट गया। इसके अलावा बच्चे आमतौर पर दूसरी भाषा (अँग्रेज़ी) को रोज़मर्रा की परिस्थितियों में इस्तेमाल करने में असमर्थ थे। वे लगभग पूरी तरह से रटने पर निर्भर थे।

मेरे कुछ प्रयोग

औपचारिक शिक्षण के बिना बच्चे जिस तरह सीखते हैं उसे ध्यान में रखते हुए मैं ऐसे अभ्यास कार्य रचती रही थी जिनसे मेरी कक्षा के बच्चे अँग्रेज़ी भाषा से जुड़ सकें जिसे वे सीख रहे थे। ऐसा करते हुए मुझे एक बड़ी कमी को ध्यान में रखना पड़ता था: वह यह कि देश के अधिकांश विद्यालयों में पाठ्यपुस्तक ही शिक्षक और विद्यार्थी को उपलब्ध एकमात्र शिक्षण उपकरण होता है। इसलिए मैं मूल पाठ को आधार बनाकर ही अधिकांश अभ्यास कार्य बनाती थी। मैं एक-एक शब्द पर, उसके हिज्जों पर और उसके अर्थ पर ध्यान केन्द्रित नहीं करती थी। मैं बच्चों को शब्द समूहों और वाक्यों से बने लम्बे पैराग्राफ देती थी ताकि उन्हें अलग-अलग शब्दों

व वाक्यों की बजाय समग्र अर्थ का बोध हो सके। जब उन्होंने शब्दों को दूसरे शब्दों से जोड़कर अर्थ निकालने का प्रयास शुरू किया, और इस तरह उन्हें समग्र अर्थ का अन्दाज़ लगने लगा, तो उन्होंने पाया कि दूसरे विषयों में भी उनकी समझ बढ़ गई है।

इसके अलावा मैंने व्याकरण की शिक्षा को पाठ से अलग नहीं किया। बल्कि मैंने बच्चों को मूल पाठ के वाक्यों में बार-बार आने वाले नमूनों को पहचानने के लिए प्रोत्साहित किया। इस तरह उन्होंने संज्ञा और क्रिया में फर्क करना शुरू किया और यह पहचानना शुरू किया कि एक संज्ञा वाक्य का कर्ता होती है तो दूसरी उसका कर्म। उन्होंने यह भी जाना कि क्रिया हमेशा कर्ता और कर्म को कार्य के द्वारा जोड़ती हुई दोनों के बीच में आती है। व्याकरण के ढाँचों और विन्यास के अनुकूल ऐसे नमूने उन्हें सुलभ हो गए जिनसे अँग्रेज़ी में सही वाक्य बनाने की उनकी क्षमता में पैनापन आया।

अब भाषा पूरी तरह से बहना शुरू हुई क्योंकि बच्चे अनुवाद प्रणाली के कारण आने वाली सीमाओं से बाहर निकल गए थे।

एक और बड़ी रुकावट है ऐसे परिवेश का अभाव जो लक्ष्य भाषा में समृद्ध हो। अँग्रेज़ी भाषा के शिक्षक आम तौर पर छात्रों



को पत्रिकाएँ पढ़ने या अखबारों से किसी चीज़ का पता करने या टी.वी. देखने को कहते हैं। पर वे इस बात पर ध्यान नहीं देते कि छात्रों के घरों में आने वाले अखबार और पत्रिकाएँ अक्सर हिन्दी में होती हैं न कि अँग्रेज़ी में, जो कार्यक्रम वे टी.वी. पर देखते हैं वे हिन्दी में होते हैं, और सड़क पर लगने वाले अधिकांश साइनबोर्ड तथा पोस्टर भी हिन्दी में ही होते हैं। घर पर ऐसा कोई नहीं होता जो उन्हें अँग्रेज़ी में बात करने का या अँग्रेज़ी सुनने का मौका दे पाए। अँग्रेज़ी का उनका एकमात्र अनुभव कक्षा में ही होता है और वह भी केवल अँग्रेज़ी के पीरियड में।

इस प्रतिकूल स्थिति से बाहर निकलने का एकमात्र रास्ता है कि सीखने वालों को प्रोत्साहित किया जाए और सीखने के उपयुक्त तथा चुनौतीपूर्ण अवसर जुटाकर उसकी रुचि को बनाकर रखा जाए। विचार-विमर्श और सामूहिक कार्य के दौरान अँग्रेज़ी में बात करने पर ज़ोर न देकर ऐसी भाषाओं के इस्तेमाल को बढ़ावा देना चाहिए जिनसे वे परिचित हों।

ऐसा नहीं है कि शिक्षण में ऐसे अभ्यास कार्य जोड़ने वाली मैं पहली व्यक्ति थी। इन्दौर, भोपाल, होशंगाबाद और मुम्बई के ऐसे कई विद्यालयों ने जिनसे मेरा नाता रहा है, भाषा के विकास और कौशल-

निर्माण के लिए कई गतिविधियाँ और अभ्यास तैयार किए हैं। पर अन्तर यह है कि ये सभी परम्परागत ढंग से कार्यान्वित किए जाते हैं। जैसे प्रश्नों को शिक्षक द्वारा हल किया जाना, विद्यार्थियों द्वारा उन्हें उतार लेना, मौखिक कवायद करना और दोहरा देना आदि। इन कार्यों को वाकई निर्धारित तरीके से कार्यान्वित करने का कोई प्रयास नहीं होता जिससे सीखने वाले को भाषाई गतिविधि में सीधे भाग लेने का मौका मिले।

इसके बाद मैंने राजीव गाँधी विद्यालय में हिन्दी शिक्षक के साथ मिलकर काम किया। हम दोनों ने निर्धारित पाठ्यपुस्तक का इस्तेमाल करते हुए भाषा कौशल को विकसित करने पर ध्यान केन्द्रित किया। हमने छात्रों को यह देखने-समझने और आत्मसात करने के लिए प्रोत्साहित किया कि अक्षर शब्दों का और शब्द वाक्यों का रूप कैसे लेते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें संरचनाओं में समानताएँ और अन्तर पकड़ना, तथा एक-एक शब्द के अनुवाद में फँसने की बजाय शब्द समूहों को इकट्ठे पढ़ना और समझना भी सिखाया गया। हमने पाया कि बच्चे हिन्दी भी तेज़ी से ग्रहण कर रहे थे।

भाषा कौशल और नमूने पहचानने के कार्य में हम सही दिशा में जा रहे हैं, इसकी और भी अधिक पुष्टि तब हुई जब मैंने इन्दौर में अँग्रेज़ी भाषा के शिक्षकों के लिए एक शिक्षक प्रशिक्षण

कार्यशाला का संचालन किया। अगली कार्यशाला में एक हिन्दी शिक्षिका, जो पहली कार्यशाला में भी थीं, ने मुझे बताया कि अँग्रेज़ी शिक्षण के लिए जो तरीके मैंने सुझाए थे उनमें से कुछ उन्होंने अपनी हिन्दी और उर्दू की कक्षाओं में आजमाए और वे सफल रहे।

इसके बाद मैंने लाम्बाखेड़ा, भोपाल स्थित रेड रोज़ उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में एक साल की कार्यावधि में इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाया। यहाँ छात्र आपस में मुख्य रूप से सिन्धी में बात करते थे और अक्सर इसमें से कुछ शब्दावली कक्षा में उनकी मौखिक अभिव्यक्ति में आ जाती थी। परिणाम होता था — बीच-बीच में आती हुई सिन्धी और/या हिन्दी के साथ मिली-जुली अँग्रेज़ी। वाक्य की (क्रिया पर समाप्त होने वाली) संरचना आम तौर पर हिन्दी की तरह होती थी। धीरे-धीरे यह बदला, और हालाँकि सिन्धी/हिन्दी शब्दों के प्रयोग की आवृत्ति लगभग वैसी ही रही, पर वाक्य की संरचना लक्ष्य भाषा की ओर खिसक गई (कर्त्ता-क्रिया-कर्म)। बाद में एक बदलाव आया और मैंने देखा कि साल के अन्त तक सीखने वालों ने एक समय पर एक ही भाषा वाले पूरे वाक्यों का इस्तेमाल शुरू कर दिया था। भाषा का चुनाव इस पर निर्भर करता था कि वे किस से बात कर रहे थे और कितनी औपचारिकता ज़रूरी थी। यहाँ भाषा के सारे अंग स्थिति के अनुसार

अपनी जगह पर होते थे और उपयुक्त भाषा इस्तेमाल की जाती थी। पर वे अब भी एक भाषा से चिपके रहने की बजाय भाषाओं की अदला-बदली करना ज़्यादा पसन्द करते थे।

इसने मुझे एक और प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया। यह स्पष्ट था कि जब विद्यार्थी भावावेश के साथ आपस में बातचीत करते थे, तो वे अपने आप उस भाषा में बात करने लगते थे जिसमें वे सहज महसूस करते थे। तब — हालाँकि मैं उन्हें अँग्रेज़ी पढ़ा रही थी — मुझे लगा कि क्यों न मैं उन्हें सामूहिक कार्य करने के लिए उस भाषा के इस्तेमाल की छूट दे दूँ जिसमें वे सहज थे, लेकिन निष्कर्षों को अँग्रेज़ी में प्रस्तुत करने को कहूँ? इस तरह मैंने सोचा कि उनकी विचार की प्रक्रियाएँ भी भंग नहीं होंगी और वे अपने विचारों को भी स्पष्टता से व्यक्त कर पाएँगे।

क्योंकि यह सामूहिक प्रयास था, इसमें मुख्य बिन्दुओं को छाँटने, उन्हें परिष्कृत करने और फिर उन्हें प्रस्तुत करने का दबाव किसी एक व्यक्ति पर नहीं पड़ा। वास्तव में, इससे प्रस्तुतकर्ता का आत्मविश्वास बढ़ा। उसका आत्मविश्वास जब दूसरों को नज़र आने लगा तो प्रस्तुतकर्ता का उत्साह और भी बढ़ा और इसी की हमें ज़रूरत थी। सामूहिक कार्य से कक्षा में सभी विद्यार्थियों में आत्मविश्वास उत्पन्न

होता है। इससे कुशलता बढ़ाना और सीखना सुगम हो जाता है क्योंकि इसमें सभी प्रकार के विद्यार्थियों के लिए कुछ-न-कुछ होता है।

भाषा पर परिवेश का असर

यहाँ मैं विषयान्तर करते हुए एक छोटी-सी बात कहूँगी। महानगरों में रोज़गार के लिए जाकर बसने वाले मध्यमवर्गीय छोटे परिवारों को एक अनूठी परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। ऐसे परिवारों के बच्चे एक से अधिक भाषाओं के परिवेश में बड़े होते हैं। एक उनकी मातृभाषा होती है जो भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में से कोई भी हो सकती है। फिर उस आया की मातृभाषा होती है जो माता-पिता के काम पर जाने के बाद बच्चे की देखभाल करती है। यह कोई अन्य भाषा हो सकती है। और अन्त में पास-पड़ोस में सहज रूप से इस्तेमाल होने वाली सामूहिक भाषा। ऐसे परिवार बताते हैं कि उनके बच्चे बिना किसी औपचारिक शिक्षण के एक साथ कई भाषाएँ सीखते हुए बड़े होते हैं। कभी-कभी वे सहज ही भाषाओं का घालमेल भी करते हैं और फिर भी ठीक से अपनी बात कह पाते हैं।

इसलिए ऐसा नहीं है कि बच्चा सिर्फ मातृभाषा ही ग्रहण कर सकता है। वह दूसरी और तीसरी भाषा भी सीख सकता है। यह कैसे होता है? एक धारणा यह है



कि हम एक भाषाई ढाँचे के साथ पैदा होते हैं, जैसे कि एक आदिम-व्याकरण हमारी चेतना में बसा हो। इसी से मौखिक रूप से मातृभाषा सीखना सम्भव होता है। पर यदि बच्चा साथ-साथ दूसरी भाषाएँ भी ग्रहण कर सकता है तो चेतना का नैसर्गिक भाषाई ढाँचा सभी भाषाओं के लिए ग्रहणशील होना चाहिए। फिर परिवेश तय करेगा कि बच्चा कौन-सी भाषा सीखता है। क्या ऐसे ढाँचे होते हैं जो बच्चा पहचानता है? क्या ऐसे नमूने होते हैं जो वह सहज ही सीख लेता है? यदि ऐसा है, तो क्या इन नमूनों और कौशलों की पहचान करके उन्हें स्कूल के औपचारिक शैक्षणिक परिवेश में दोहराया जा सकता है? क्या उन्हें सुदृढ़ करने के लिए सीखने के उपयुक्त तरीके और अभ्यास विकसित किए जा सकते हैं?

यदि बच्चे का परिवेश एक से अधिक भाषाओं वाला हो, या वह मातृभाषा पर पकड़ बना लेने के बाद कोई दूसरी भाषा सीखना शुरू करता है, तो एक मज़ेदार प्रक्रिया घटने लगती है। बच्चा अपना अभिप्राय व्यक्त करने के लिए मातृभाषा की सीमाओं को लांघकर वैकल्पिक शब्दों और व्याकरण के ढाँचों का उपयोग करने लगता है। इसे संकेतों का मिश्रण (code mixing) कहते हैं। किसी से बात करते समय बच्चे में दूसरे भागीदार के हिसाब से भाषाओं को अदल-बदल करने की प्रवृत्ति भी आ जाती है। इसे संकेतों का बदलाव

(code switching) कहते हैं।

ये दोनों प्रक्रियाएँ मनमाने ढंग की न होकर व्यावहारिक होती हैं और सामाजिक रूप से सार्थक होती हैं। इसका अर्थ यह है कि इनसे किसी भाषा की समझ और प्रयोग में कमज़ोरी प्रकट नहीं होती। वास्तव में, इनमें वैचारिक सम्प्रेषण के लिए दो भाषाओं का अदल-बदल कर प्रभावी उपयोग करने का कौशल झलकता है। यह गतिशील प्रक्रिया है।

संक्षेप में कहें तो दूसरी भाषा में दक्षता के सन्दर्भ में तीन तल दिखाई देते हैं। पहले तल पर वह विद्यार्थी है जिसे व्याकरण और अनुवाद की पद्धति से दूसरी भाषा सिखाई गई है। वह एक सरल प्रक्रिया का अनुसरण करता है जिसमें एक भाषा के पदों का दूसरी भाषा के समतुल्य पदों में अनुवाद कर दिया जाता है। यह वास्तव में दूसरी भाषा पर अधिकार करने का प्रारम्भिक स्तर है और सीखने वाला अक्सर इसके पार नहीं जा पाता।

सीखने का दूसरा तल वह है जहाँ सीखनेवाला अर्थ सम्बन्धी दो भिन्न आधारों का स्वतंत्र रूप से प्रयोग करता है — एक, पहली भाषा के लिए और दूसरा, दूसरी भाषा के लिए। इसमें सीखने वाला एक भाषा से दूसरी भाषा में शब्द-शब्द या पद-पद का अनुवाद करने का सरल तरीका नहीं अपनाता, बल्कि ऐसा लगता है कि वह समान्तर शब्दों या पदों का उपयोग करते हुए दोनों भाषाओं में मिलते-जुलते भाषाई

संकेत पैदा करता है।

सीखने का तीसरा स्तर वह है जिसमें सीखने वाला एक ही संयुक्त अर्थाधार (semantic base) का उपयोग करता है, उसका सन्दर्भ समूह भी एक ही होता है, और उसका पहली और दूसरी, दोनों भाषाओं के संकेतों (codes) पर सम्पूर्ण अधिकार होता है। वह जब चाहे, बिना अनुवाद का सहारा लिए पहली या दूसरी भाषा के शब्दों या पदों को सोच या बोल सकता है, और उसे ऐसा बिलकुल नहीं लगता कि वह दो अलग वस्तुओं या सन्दर्भों को निर्दिष्ट कर रहा है।

मिश्रित भाषाओं का प्रयोग

यहाँ मैं अपने मुख्य मुद्दे पर आना चाहती हूँ। यह देखते हुए कि अधिकांश कक्षाओं में हिंगलिश (Hinglish: हिन्दी के साथ मिलकर अँग्रेज़ी का बिगड़ा हुआ रूप) का व्यापक उपयोग होता है, हमें दोनों भाषाओं को साथ-साथ सिखाए जाने और कक्षाओं में दोनों भाषाओं की पारस्परिक स्वीकार्यता की और पड़ताल करनी चाहिए। अभी तो विद्यार्थियों को शिक्षा की माध्यम भाषा, अँग्रेज़ी, में न बोलने पर जुर्माना देना पड़ता है या दण्ड भुगतना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि सीखने वाले लक्ष्य भाषा यानी अँग्रेज़ी में बोलने के प्रयास ही छोड़ देते हैं।

भाषाई कौशल विकसित करने के लिए



हिन्दी सिखाने और इसी ढंग से साथ-साथ अँग्रेज़ी सिखाने का परिणाम क्या होगा? मैंने पाया कि दोनों भाषाओं को एक साथ सिखाने पर भाषा सीखने का अनुभव गहरा होता है और उसकी गुणवत्ता में वृद्धि होती है। साथ ही, विद्यार्थी न केवल सक्षम ढंग से सम्प्रेषण कर पाते हैं बल्कि उनकी विश्लेषण व तर्क करने की तथा इसी प्रकार उनकी वैज्ञानिक और रचनात्मक कुशलताएँ भी विकसित होती हैं। इस कारण वे दूसरे विषयों के साथ-साथ प्रतियोगी परीक्षाओं में भी अच्छा प्रदर्शन कर पाते हैं, जो वे पहले कभी सोच भी नहीं सकते थे।

जैसा पहले कहा जा चुका है, मैंने यह प्रयोग माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में किया था। लेकिन मुझे जो सफलता मिली उससे लगता है कि यह तरीका प्रारम्भिक स्तरों पर — प्राथमिक कक्षाएँ या उससे पहले — भी कारगर हो सकता है। जैसा कि आपने देखा होगा, बहुभाषी परिवेश में छोटे बच्चे भी एक से अधिक भाषाएँ साथ-साथ सीख लेते हैं। हिन्दी और उर्दू साथ-साथ सीखने का इन्दौर का जो उदाहरण मैंने दिया था उसमें भी बच्चे तीसरी और चौथी कक्षा के थे। दूसरे शब्दों में, यदि छोटे बच्चों को लक्ष्य भाषा से परिचित होने का अवसर मिले तो वे उसे सीख सकते हैं। आखिरकार, सीखने की दृष्टि से शुरुआती बचपन

अत्यन्त ग्रहणशील होता है। इन तथ्यों को देखते हुए क्यों न बच्चों को एक साथ मातृभाषा/राष्ट्रभाषा और अँग्रेज़ी से साथ-साथ परिचित कराया जाए? यद्यपि, जैसा मैंने पहले कहा, अँग्रेज़ी सिखाने का उपयुक्त समय बच्चे के मातृभाषा में कुशल हो जाने के बाद ही होता है, तो भी इस बारे में सोचा जा सकता है।

किस कक्षा में और किस क्रम में भाषाओं का शिक्षण हो, यह शोध का विषय है। अभी तक न तो इसे व्यवस्थित ढंग से अंजाम दिया गया है और न ही इसका डॉक्यूमेंटेशन हुआ है। इस तरीके से शिक्षण का अलग-अलग विद्यार्थियों के भाषा सीखने पर और समग्र रूप से भाषा को समझने, उसका उपयोग करने, आवश्यकतानुसार उसे ढालने, संशोधित करने और अभिव्यक्त करने पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसकी भी पड़ताल करने की ज़रूरत है।

निष्कर्ष में, मैं कहना चाहूँगी कि पहली भाषा से दूसरी भाषा में जाने की गति को बढ़ाया जा सकता है, बशर्त कि दोनों भाषाओं पर साथ-साथ काम किया जाए, रटने और अनुवाद करने के तरीके को त्याग दिया जाए, कक्षा में एक से अधिक भाषाओं में मुक्त बहस होने दी जाए, और मिश्रित भाषा के उपयोग को स्वीकार किया जाए। ऐसा दृष्टिकोण विद्यार्थियों को पढ़ने, समझने, विश्लेषण करने, तर्क करने, सुसंगत उत्तर देने

और अपने को अभिव्यक्त करने में अधिक सक्षम बनाएगा जिससे वे वास्तविक जीवन की परिस्थितियों से निपटने में काफी हद तक समर्थ होंगे।

परन्तु अप्रशिक्षित, निरुत्साही, उदासीन शिक्षक इसमें बड़ी बाधा बनते हैं। अधिकांश शिक्षक संयोगवश ही इस पेशे में आते हैं। वे हीन आत्मछवि से ग्रस्त होते हैं और उनमें काम के प्रति बहुत कम उत्साह दिखाई देता है। सरकारी स्कूलों सहित प्राथमिक शालाओं के अध्ययनों में झलकता है कि शिक्षकों को प्रायः यह ठीक से समझ में नहीं आता कि कक्षा में बच्चों को सीखने में सटीक मदद कैसे करें। ऐसा लगता है कि शिक्षकों की अपनी भूमिका के बारे में समझ स्कूल तथा कॉलेज के उनके अपने अनुभवों और समाज में बड़ों तथा बच्चों के बीच सम्बन्धों के बारे में प्रचलित नज़रिए पर आधारित होती है।

पर अन्ततः वे ही असली कुंजी हैं, वे ही इस प्रक्रिया की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी हैं, वे ही भाषा पाठ्यक्रम को लागू करते हैं। उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती और न ही की जानी चाहिए। ज़रूरत इस बात की है कि भाषा की कक्षा में अपनी भूमिका बेहतर ढंग से समझने में उनकी मदद की जाए। उन्हें अपने विषय की बेहतर समझ और भाषाई कौशल विकसित करने की ज़रूरत है। उनकी गहरी मान्यताओं और कक्षा की प्रचलित कार्य प्रणाली को बदलने के लिए ऐसे कारगर शिक्षक-

प्रशिक्षण कार्यक्रमों की आवश्यकता है जो कक्षा के परिवेश की वास्तविकताओं और बच्चों की ज़रूरतों का ध्यान रखकर बनाए गए हों।

प्रारम्भ में शिक्षकों को अपनी मान्यताओं तथा कक्षा की कार्य प्रणाली की वैचारिक जाँच-परख करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उन्हें नए विचारों पर चिन्तन-मनन करने का और नई कार्य पद्धतियों को आजमाने का भरपूर अवसर मिलना चाहिए। प्रशिक्षण और वार्तालाप-विश्लेषण के दौरान मिलने वाली प्रतिक्रियाएँ उनके

विकास में सहायक होंगी, और रचनात्मक विचार-विमर्श के लिए प्रारम्भिक सामग्री उन्हें अपनी कक्षाओं के अवलोकन से सुलभ हो जाएगी। इस तरह उन्हें कक्षा के पारम्परिक ढाँचे को बदलने के लिए आवश्यक नए प्रारूप गढ़ने में मदद मिलेगी।

इस सन्दर्भ में मेरा अनुभव यह है कि स्वयं को दीन समझने वाले, कम वेतन पाने वाले और भाषा तथा शैक्षणिक कौशल की दृष्टि से कमज़ोर शिक्षकों को भी सुधार के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

एलीथिया डी. रोज़ारियो: बीस वर्षों तक विभिन्न स्कूलों में अँग्रेज़ी पढ़ाने का अनुभव। पिछले कुछ वर्षों से भोपाल में एकलव्य के साथ भाषा शिक्षण पर काम कर रही हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: भरत त्रिपाठी: पत्रकारिता की पढ़ाई। स्वतंत्र लेखन और द्विभाषिक अनुवाद करते हैं। होशंगाबाद में निवास।

